जनसत्ता

30 मई, 2019

जाति का दंश

मुंबई के एक अस्पताल में काम करने वाली डॉक्टर पायल तडवी की आत्महत्या ने एक बार फिर यह सोचने पर मजबूर किया है कि आजादी के सात दशक बाद भी हमारे समाज में वंचित तबके के प्रति बराबरी और इंसाफ की भावना का पर्याप्त विकास क्यों नहीं हो सका है। मुंबई के बीवाइएल नायर अस्पताल में रेजिडेंट डॉक्टर पायल तडवी ने अपनी तीन वरिष्ठ डॉक्टरों की प्रताड़ना से तंग आकर बाईस मई को आत्महत्या कर ली थी। उत्पीड़न की शक्ल केवल पद या कद के संवेदनहीन बर्ताव से नहीं जुड़ी थी, बल्कि खबरों के मुताबिक रैगिंग के नाम पर पायल को अपमानित और प्रताड़ित करने के लिए उन पर जातिसूचक फब्तियां कसी जाती थीं। पायल तडवी आदिवासी समुदाय की भील जाति की पृष्ठभूमि से थीं और उनके परिवार ने काफी संघर्ष से उन्हें डॉक्टरी की पढ़ाई करने के लिए भेजा था। लेकिन चिकित्सा विज्ञान जैसे क्षेत्र में अपनी काबिलियत के बूते जगह बनाने के बावजूद उन्हें जाति के आधार पर होने वाले उत्पीड़न का सामना करना पड़ा। जाहिर है, यह सामाजिक और जातिगत भेदभाव से जुड़ा मामला है, जिसने पायल को खुदकुशी कर लेने पर मजबूर कर दिया।

विडंबना यह है कि इसकी शिकायत अस्पताल के संबंधित जिम्मेदार लोगों से की गई थी, लेकिन वक्त पर कोई कार्रवाई करना जरूरी नहीं समझा गया। अब अस्पताल प्रबंधन या कोई भी अगर घटना पर अफसोस जाहिर करता है या कार्रवाई का भरोसा देता है तो इसकी क्या अहमियत है! मामले के तूल पकड़ने के बाद अब जाकर उन तीनों आरोपी महिला डॉक्टरों को गिरफ्तार किया गया है और उन पर अनुसूचित जाति-जनजाति (अत्याचार निवारण) कानून के तहत मुकदमा चलेगा। लेकिन शिकायत को समय पर गंभीरता से नहीं लेने की वजह से क्या अस्पताल प्रबंधन को भी कठघरे में नहीं खड़ा किया जाना चाहिए? आखिर किन वजहों से अस्पताल का प्रबंधन अपने परिसर में नौकरी या पढ़ाई के लिए कमजोर तबकों से आने वाले लोगों के बीच बराबरी और भेदभाव से मुक्त माहौल मुहैया करा पाने में नाकाम साबित हुआ? यह समझना मुश्किल है कि विज्ञान पर आधारित एक विषय में उच्च शिक्षा ग्रहण कर रही तीनों आरोपी महिला डॉक्टरों के भीतर अपने उच्च कही जाने वाली जाति से होने का दंभ कैसे बरकरार था और उनके लिए अपनी ही एक सहयोगी को जाति के आधार पर इस हद तक प्रताड़ित करना कैसे संभव हुआ कि उसकी सहनशक्ति जवाब दे गई?

सही है कि कुछ घटनाओं के आधार पर सब तरफ एक-सी स्थिति होने को अंतिम सच नहीं माना जाना चाहिए। लेकिन यह भी सच है कि विकास के तमाम दावों के बीच जातिगत भेदभाव के ऐसे बर्ताव न केवल देश के पिछड़े माने जाने वाले इलाकों में रहने वाले समुदायों, बल्कि आधुनिकता और उच्च शिक्षा की चकाचौंध में भी अक्सर सामने आते रहते हैं। यह तब है जब दलित-वंचित तबकों और आदिवासियों के संरक्षण के लिए संविधान में विशेष व्यवस्था है, कानूनी प्रावधान हैं। अंदाजा लगाया जा सकता है कि अगर ऐसे कानूनी संरक्षण नहीं होते तब खुद को उच्च कही जाने वाली जाति से मानने वालों का व्यवहार दलित-वंचित जातियों-तबकों के लोगों के प्रति क्या होता! सवाल है कि इस तरह के जातिगत विद्वेष और दुराग्रहों पर आधारित मानसिकता के साथ जीते हुए क्या हम एक सभ्य और संवेदनशील समाज होने का दावा कर सकते हैं? मुंबई की घटना में अगर समय रहते जरूरी कदम उठाए गए होते तो समाज में विकास और बराबरी के पायदान पर काफी पीछे रह गए समुदाय से आने वाली पायल आज शायद जीवित होतीं और अपनी काबिलियत से समाज और देश की सेवा कर पातीं। लेकिन जातिगत भेदभाव से संचालित नफरत की मानसिकता ने असमय ही उनकी जिंदगी छीन ली।

सुरक्षा का सवाल

राजस्थान में पिछले कुछ समय में बलात्कार की घटनाएं जिस तेजी से बढ़ी हैं उससे तो लग रहा है कि राज्य में कानून-व्यवस्था एकदम चौपट है और अपराधियों के हौसले बुलंद। हालात बता रहे हैं कि कानून-व्यवस्था और आम जनता की सुरक्षा का जिम्मा संभालने वालों ने अपराधियों के आगे हाथ खड़े कर दिए हैं। वरना आए दिन बलात्कार की घटनाएं कैसे हो सकती हैं! और ऐसी शर्मनाक व दहला देने वाली वारदातों को अंजाम देने वाले पकड़ से बाहर क्यों बने रहते हैं? हाल में लोकसभा चुनावों के दौरान तो राज्य में कड़ी सुरक्षा व्यवस्था का दावा किया गया था, पुलिस एकदम चौकस थी, इसके बावजूद सामूहिक बलात्कार की घटनाएं सामने आईं। अलवर, भरतपुर और झालावाड़ में हुई इन शर्मनाक घटनाओं ने कड़ी सुरक्षा के सरकार के दावों की पोल खोल दी। इन घटनाओं ने सरकार, पुलिस और समाज के समक्ष गंभीर सवाल खड़े किए हैं। घूम-फिर के सवाल यही आ जाता है कि आखिर हमारा सत्ता तंत्र क्यों इस तरह की घटनाएं नहीं रोक पा रहा है।

इसी महीने प्रदेश के अलवर जिले के थानागाजी में एक महिला से सामूहिक बलात्कार की वारदात सामने आई थी। अपराधियों ने इस महिला के पति को बांध दिया और फिर घटना को अंजाम दिया। इतना ही नहीं, घटना का वीडियो बना कर उसे वायरल कर दिया। लेकिन इन सबसे ज्यादा त्रासद तो यह था कि जब महिला और उसका पति थाने पहुंचे तो पुलिस ने कोई कार्रवाई नहीं की। घटना के चार-पांच दिन बाद जब मामला गरमाया, ग्रामीण सड़कों पर उतरे, विपक्षी दल सक्रिय हुए और जयपुर में बैठे सत्ताधारी नेताओं को मामले की गंभीरता का भान हुआ तो सरकार हरकत में आई। घटना के कई दिन बाद रिपोर्ट दर्ज हुई। यह पूरी घटना बताती है कि सामूहिक बलात्कार करने वाले तो संगीन अपराधी, दोषी, समाज के लिए खतरा सब कुछ हैं ही, उससे कहीं ज्यादा खतरनाक और दोषी वे लोग हैं जो इस तरह की घटनाओं को सामने आने देने से बचना चाहते हैं और दोषियों को बचाने में, सत्ताधारियों को खुश करने जैसे कामों में लग जाते हैं। पुलिस का यह स्याह पहलू ही अपराधियों के हौसले बुलंद करता है।

पिछले एक साल के आंकड़े बता रहे हैं कि राजस्थान में रोजाना छह बच्चियां यौन उत्पीड़न का शिकार हुई हैं। इससे पहले यानी साल 2017 में यह आंकड़ा चार का था। पिछले साल राज्य में बलात्कार के चार हजार तीन सौ पैंतीस मामले दर्ज हुए थे, इनमें आधे मामले बच्चियों से बलात्कार के थे। और चौंकाने वाली बात तो यह है कि बच्चियों से बलात्कार की घटनाएं सबसे ज्यादा जयपुर और अलवर जिले में ही हुईं। हालांकि भरतपुर, जोधपुर, उदयपुर और बारां जिलों में भी इन वारदातों का आंकड़ा सौ के ऊपर ही रहा। इसका मतलब तो यह हुआ कि इन जिलों में महिलाएं जरा भी सुरक्षित नहीं हैं और न ही सरकार को इसकी चिंता है। ऐसे में सवाल उठता है कि सुरक्षा के नाम पर सरकार कर क्या रही है। क्यों पुलिस प्रशासन ऐसी घटनाओं से एकदम अनजान और लापरवाह बना हुआ है? अगर हालात खराब हैं तो ऐसे जिलों में अतिरिक्त सुरक्षा का बंदोबस्त क्यों नहीं किया जा रहा? कहने को कानून के मुताबिक पुलिस अपनी भूमिका निभाती है, लेकिन उसकी भूमिका पर सवाल तब उठते हैं जब पीड़ितों को न्याय नहीं मिलता। पुलिस ज्यादातर मामलों को झूठा बता कर बंद कर देती है। ऐसी घटनाओं को रोकने में समाज की भूमिका, लोगों खासतौर से महिलाओं को जागरूक बनाना तो समाधान है ही, सबसे बड़ी जरूरत उस चौकस और ईमानदार तंत्र की भी है जिससे अपराधियों में भय पैदा हो।

कल्पमेधा

जो नैतिकता में अनुचित है वह राजनीति में कभी उचित नहीं हो सकता।
-डेनियल ओ कौन्नेल

रोजगार का गहराता संकट

सुविज्ञा जैन

रोजगार की मांग का मोटा हिसाब लगाएं तो देश में इस समय नौकरी चाहने वालों की संख्या छह करोड़ से कम नहीं बैठेगी। जबकि सरकारी अनुमान में यह आंकड़ा तीन करोड़ बैठता है। ये अनुमान सिर्फ पूर्ण बेरोजगारों की संख्या के हैं। अगर बेरोजगारों के सभी प्रकारों को लेखे में लें तो समस्या और ज्यादा बड़ी दिख सकती है।

इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि देश का एक बड़ा तबका जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं के लिए जूझता दिख रहा है। यह भी निर्विवाद है कि बुनियादी जरूरतें पूरी होने का पैमाना नागरिकों की माली हालत है। इसीलिए प्रतिव्यक्ति आय को देश की खुशहाली का पैमाना मान लेने का चलन है। लेकिन इसमें एक विसंगति है। प्रतिव्यक्ति आय देश की कुल आय को देश की आबादी से भाग देकर निकलती है। यानी यह अंदेशा बना रहता है कि कहीं आर्थिक विषमता की स्थिति तो नहीं है। हर नागरिक तक न्यूनतम संसाधन पहुंचाना अगर लोकतंत्र का मुख्य मकसद है और अगर यह बात सर्वमान्य है तो नई सरकार के लिए सबसे पहला काम इसके अलावा और क्या हो सकता है। इसीलिए आज का सवाल यही बनता है कि संसाधनों के समवितरण के इस मकसद को पूरा करने के लिए सरकार क्या करे?

भारत के लिए बेरोजगारी की समस्या कुछ ज्यादा ही गंभीर है। तब तो और ज्यादा जब हम खुद को एक युवा देश बताते हों। हमारी आधी से ज्यादा आबादी पैंतीस साल से कम उम्र के युवाओं की है। हर साल देश की आबादी डेढ़ करोड़ प्रतिवर्ष की रफ्तार से बढ़ती ही जा रही है। उसी रफ्तार से युवा बेरोजगार बढ़ रहे हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था इस समय इतनी बड़ी आबादी को काम-धंधे में खपा पाने में लाचार है। उद्योग जगत नई नौकरियां पैदा नहीं कर पा रहा है। दूसरी ओर, कृषि प्रधान देश में खेती किसानी में रोजगार बढ़ाने की गुंजाइश लगभग खत्म हो चली है। ग्रामीण युवा अब पुश्तैनी खेती छोड़ कर नौकरी या दिहाड़ी मजदूरी की तलाश में गांव से निकल रहे हैं। रही बात शहरों की, तो भले ही डिग्रीधारी शहरी बेरोजगारों के आंकड़े हमारे पास न हों लेकिन सामान्य पर्यवेक्षण के आधार पर कोई भी कह सकता है कि शहरी बेरोजगारी भयावह रूप लेती जा रही है। ऐसे में शहरी और ग्रामीण बेरोजगारी को जोड़ कर हालात देखें तो कोई भी विवाद में नहीं उलझेगा कि यह समस्या सबसे बड़ी है या नहीं।

कुछ महीने पहले बेरोजगारी पर एनएसएसओ (नेशनल सैंपल सर्वे कार्यालय) की रिपोर्ट मीडिया में लीक हो जाने के बाद सनसनी फैल गई थी। इस रिपोर्ट से पता चला था कि पिछले साल बेरोजगारी की दर साढ़े चार दशक में सबसे ऊपर पहुंच गई है। यह आंकड़ा छह दशमलव एक फीसद था। अभी सरकार बेरोजगारी दर निकालने के लिए जो फार्मूला लगाती है वह भी जटिल है। चक्कर यह है कि इस फार्मूले में रोजगार पाए लोगों की संख्या, रोजगार चाहने वालों की संख्या और देश में कार्य करने लायक कुल नागरिकों की संख्या को जोड़, घटा, गुणा, भाग करके निकाला जाता है। इस कवायद में यह सवाल पूछने की गुंजाइश ही कम हो जाती है कि क्या रोजगार मांगने वालों की संख्या वाकई उतनी ही है जितनी बेरोजगारों की वास्तविक संख्या है, क्योंकि कृषि प्रधान देश में गांवों की आबादी देश की कुल आबादी की आधी से ज्यादा है। वहां के युवाओं को रोजगार की मांग रखने के तरीके तक नहीं पता। हालांकि इसी रिपोर्ट के मुताबिक एक और आंकड़ा पता चला था। वह यह कि 2017-18 में 18.7 फीसद शहरी युवक और 27.2 फीसद युवतियां नौकरी ढूंढ़ रहे थे। ये युवा पंद्रह से उनतीस साल के थे। गांवों में यह आंकड़ा क्रमशः 17.4 और 13.6 फीसद बताया गया। यानी इस उम्र के पांच युवाओं में एक नौकरी या काम मांग रहा था। इस उम्र के युवाओं की संख्या कम से कम तीस करोड़ बैठती है। इस तरह से छह करोड़ बेरोजगार तो ये युवा ही हो गए। इस दौरान लेबर फोर्स पार्टिसिपेशन रेट (कार्यबल भागीदारी में कमी) घटने का भी पता चला था। यह दर बताती है कि काम करने लायक उम्र वाली आबादी में काम पाए और काम चाह रहे नागरिकों का अनुपात क्या है। यह दर घट कर 36.9 फीसद रह गई है। इससे यह पता चलता है कि काम करने लायक उम्र के सभी नागरिकों में 63.1 फीसद लोग ऐसे हैं जो किसी काम में नहीं लगे हैं।

बेरोजगारी के हालात का अंदाजा लगाने के लिए तथ्य और भी हैं। मसलन, देश में रोजगार मांगने वाले नए युवाओं की संख्या कम से कम डेढ़ करोड़ प्रति वर्ष की रफ्तार से बढ़ रही है। सही-सही आकलन में

मुश्किल यह है कि सरकार कई बार बेरोजगारी के आंकड़े बताने में अपनी असमर्थता जता चुकी है। खुद नीति आयोग ने कबूल किया था कि ये आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। कितने लोग नौकरियां तलाश रहे हैं, इसका काफी कुछ अंदाजा सरकारी नौकरियों में भर्ती की प्रक्रिया देख कर भी लगाया जा सकता है। भर्ती प्रक्रिया को लेकर युवाओं में भारी असंतोष है। हालांकि ये वे ही थोड़े से बेरोजगार युवा हैं जिन्होंने सरकारी नौकरी में भर्ती की प्रक्रिया से अपने को गुजार लिया है और महीनों से नियुक्ति पत्र के इंतजार में हैं। लेकिन वे युवा जो एक पद के लिए हजार पांच सौ की तादाद में आवेदन करते हैं और नौकरी पाने में नाकाम होते हैं, उनकी संख्या करोड़ों में हैं। मसलन, राजस्थान में एक जगह चपरासी के अठारह पदों के लिए अठारह हजार बेरोजगारों के आवेदन आते हैं। ऐसा लगभग हर राज्य में है। ऐसे ही देश के सबसे बड़े सरकारी पदों का चुनाव करने वाली यूपीएससी की परीक्षा में करीब नौ सौ पदों के लिए दस लाख युवा फॉर्म भरते हैं। असंगठित और निजी क्षेत्र में काम ढूंढ़ रहे युवाओं की संख्या का तो हिसाब ही नहीं है। रोजगार की मांग का मोटा हिसाब लगाएं तो देश में इस समय नौकरी चाहने वालों की संख्या छह करोड़ से कम नहीं बैठेगी। जबकि सरकारी अनुमान में यह आंकड़ा तीन करोड़ बैठता है। ये अनुमान सिर्फ पूर्ण बेरोजगारों की संख्या के हैं। अगर बेरोजगारों के सभी प्रकारों को लेखे में लें तो समस्या और ज्यादा बड़ी दिख सकती है।

मोटे तौर पर देश में बेरोजगारी के चार प्रकार हैं। पहला पूर्ण बेरोजगार, दूसरा आंशिक बेरोजगार, तीसरा छद्म रोजगार में लगे बेरोजगार और चौथा-अपनी क्षमता से कम काम पाए बेरोजगार। इन चार प्रकारों में फिलहाल उन्हें छोड़ा भी जा सकता है जो अपनी योग्यता और क्षमता से कम हैसियत का काम हासिल किए हुए हैं। सर्वेक्षणों के अभाव में इसका आकलन करना है भी बड़ा मुश्किल। देश में भयावह बेरोजगारी के इस दौर में उन्हें जैसा भी काम मिला हुआ है वे मन मसोस के कर ही रहे हैं। लेकिन बाकी तीन प्रकारों के बेरोजगारों की हालत हद से ज्यादा खराब है। आंशिक बेरोजगार वे लोग हैं जिन्हें साल में कुछ दिन ही काम मिलता है। वैसे सरकारी आंकड़ों में इन्हें रोजगार पाए लोगों में ही गिन लिया जाता है। प्रबंधन प्रौद्योगिकी की भाषा में छद्म बेरोजगारी वह होती है जिसमें किसी काम में जरूरत से ज्यादा लोग लगे हों। जैसे दो-चार लोगों के लायक काम में आठ-दस लोग लगे हों। जाहिर है, वहां उनके मेहनताने पाने की गुजाइश नहीं होती। भारत का कृषि क्षेत्र इस समय छद्म बेरोजगारी का सबसे बड़ा शिकार है। गांव के करोड़ों युवा मनरेगा जैसी सीमित योजना में काम न मिलने के कारण थोड़ी-थोड़ी अपने परिवार के बड़ों के साथ फिजूल में काम करते पाए जाते हैं।

लब्बोलुआब यह है कि बेरोजगारी के सभी प्रकारों को जोड़ कर समस्या इतनी व्यापक है कि वह शहर गांव, महिला पुरुष, युवा प्रौढ़, प्रशिक्षित, शिक्षित अशिक्षित यानी देश के हर वर्ग को अपनी चपेट में लिए हुए है। इसीलिए सरकार की प्राथमिकता की सूची में सबसे ऊपर बेरोजगारी से निपटने का लक्ष्य होना चाहिए।

यायावरी का पाठ

पूनम पांडे

दुनिया मेरे आगे

कभी एक किताब में पढ़ा था कि 'हमारा यह जीवन सांसों की एक यात्रा ही है।' मगर इन सांसों को स्फूर्तिमय बनाने को हम कभी पैदल, कभी साइकिल पर तो कभी बस या रेलगाड़ी से, कभी हवा या समंदर के रास्ते सफर कर मनोविनोद, पर्यटन, खोज, तीर्थ यानी किसी न किसी बहाने अलग-अलग जगहों पर घूम कर अपने आपको कई स्तरों पर समृद्ध कर जाते हैं। यह भी सच है कि सौ किताबें पढ़ कर भी जो जानकारी नहीं मिलती, वह दस जगहों की यात्रा करके जरूर मिल जाती है।

यात्रा की कई शक्लें हो सकती हैं। हम सभी हर वक्त किसी न किसी यात्रा में होते हैं। हर कोई बचपन से लेकर आखिरी सांस तक सफर में है। किसी को कॅरियर पाने की दिशा में संघर्ष करना है तो किसी को समाज सेवा के सारे पड़ाव देखने हैं। इसे भी एक तरह की यात्रा या सफर ही कहते हैं। मगर इस तरह के सफर के अलावा एक घुमक्कड़ी का सफर भी है, जिसका हम सबको अनुभव करना ही चाहिए। यात्रा क्यों की जाती है या क्यों करनी चाहिए, इस पर सामाजिक मनोविज्ञान कहता है कि हम अपने आप को किसी दूसरे रूप में महसूस करना चाहते हैं। हमारा चित्त एकरसता से उकता जाता है और उसमें आलस, प्रमाद, सुस्ती के लक्षण उभरने लगते हैं। यात्रा इन सबसे उबार कर तरोताजा कर देती है।

कुछ समय पहले यात्रा की शौकीन एक युवती से मुलाकात हुई। उसका कहना था कि अब किसी यात्रा पर निकलने के पहले पल से ही मेरे भीतर अनूठी ऊर्जा पैदा हो जाती है। मुझे लगता है कि जैसे मैं बिल्कुल नई हो चुकी हूं। मुझे बस यात्रा का आनंद लेना होता है, उसे यादगार बनाने के लिए तस्वीरें खींचनी होती हैं। यात्रा मानो मेरी मेजबानी करती है। हर पल कोई सुकून देता हुआ हवा का झोंका दिल को और भी ज्यादा जवां कर देता है। खुद से बात करना बस मौज और उमंग में डूबना होता है। न कोई दूध वाला दरवाजा खटखटाता है, न कोई सब्जी-भाजी वाला आवाज देता है। दफ्तर के बॉस को कोई रिपोर्ट नहीं देनी, रोज का ऊब पैदा करने वाला रुटीन पागल नहीं बनाता। किसी औपचारिकता को निभाने की जरूरत नहीं होती, कोई ड्यूटी नहीं, बस परम सुख का महासागर है। मस्ती भरी यात्रा है और मैं यहां अपनी रियासत की रानी हूं। यात्रा से जुड़े अहसासों की यह खूबसूरती उस युवती की हो सकती है, लेकिन ये अनुभव हम सबमें से बहुतों के सच्चे तजुर्बे हो सकते हैं।

सिर्फ नदी के किनारे खड़े होकर पानी देखने से न तो पानी से दोस्ती होती है, न ही नदी पार होती है। उसी तरह यात्रा और उसके सुखद अहसास भी घर पर बैठे-ठाले सोचने से नहीं, करने से मिलते हैं। राहुल सांकृत्यायन घुमक्कड़ी के लिए भी मशहूर रहे। उन्होंने जीवन भर बहुत भ्रमण किया, हजारों बार यात्राएं कीं। बहुत कम सुविधाओं में भी उन्होंने संपूर्ण भारतवर्ष, श्रीलंका, बर्मा, तिब्बत, सोवियत संघ, जापान, कोरिया, इराक, ईरान, यूरोप आदि की सार्थक यात्रा कीं और साहित्य की भी भरपूर सेवा की। वे जहां भी गए वहां के इतिहास और भूगोल को समझा और ग्रंथ लिखते गए, ताकि दूसरे लोग भी घूमने-फिरने का अलौकिक अनुभव ले सकें। मध्य एशिया का इतिहास, तिब्बत साहित्य, वोल्गा से गंगा, किन्नर देश, यूरोप यात्रा आदि सैकड़ों पुस्तकें वे लिख गए। वे यह संदेश अक्सर लोगों तक पहुंचाते थे कि 'घुमक्कड़ होना आदमी के लिए परम सौभाग्य की बात है।' ह्वेनसांग, फाह्यान, मैगलेन, मेगस्थनीज जैसे नाम संसार के लोकप्रिय पर्यटक के रूप में जाने जाते हैं और इनकी भूमिकाएं दुनिया भर के लिए स्थायी महत्त्व की हैं। आज भी इनके यात्रा प्रसंग उल्लेखनीय हैं और समकालीन इतिहास को समझने में मददगार हैं।

नकारात्मक विचारों से जितनी जल्दी मुक्ति मिल जाए, उतना ही अच्छा और यात्रा इस मामले में हमारी सच्ची दोस्त बन जाती है। सच यही है कि यात्रा करते समय हम अपने बहुत करीब होते हैं। जापान में प्रचलित एक कहावत है कि दिमाग जितना खुलता है, शरीर उतना ही अधिक मजबूत होता है। यह काम दवा से बेहतर यात्रा कर देती है। सबसे खास बात यह कि इसके विषाक्त दुष्परिणाम भी नहीं होते। अमूमन हर मौके पर यात्रा दिमाग को फायदेमंद ढंग से उर्वर बनाती है।

कहते हैं कि ज्ञान बस किताबें मात्र नहीं होती हैं, यात्रा उससे हजार गुना बड़ा महाकाव्य है, जिसे हम बांचते हैं और उसमें शामिल भी होते हैं। जो लोग हर साल कुछ दिन यात्रा के लिए सहेज कर रखते हैं, उनका मानना है कि उनके मानसिक लचीलेपन, उनकी उदारता, साझा करके चीजों का उपयोग करना, सहानुभूति जैसे गुण आश्चर्यजनक रूप से यात्रा की ही देन हैं। एक बार फिर से राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में कहूं तो 'जो मानव चिंताहीन हो, वही घुमक्कड़ी कर सकता है और चिंताहीन होने के लिए तो घुमक्कड़ी बहुत ही आवश्यक है।'

चौपाल

समझ से परे

देश की जनता ने मौजूदा केंद्र सरकार पर पूर्ण बहुमत के साथ आगामी पांच वर्ष के लिए फिर भरोसा जताया है। कांग्रेस और अन्य विपक्षी दल चुनाव से पहले और नतीजे आने के बाद भी यह बात कह रहे हैं कि प्रधानमंत्री ने देश की जनता को बेवकूफ बनाया, धोखा दिया और जनमानस इसको 'समझ' नहीं पाया। यदि इसे सही मान लिया जाए तो हम सब इस बात से अवगत हैं कि सामने वाले की तरफ उठने वाली हाथ की एक अंगुली के अलावा शेष चार स्वयं की ओर संकेत करती हैं। कांग्रेस को आत्ममंथन करना चाहिए कि उसने लंबे समय तक देश की सत्ता संभाली थी। अगर इस दौरान उसने देश को सुशिक्षित करने के लिए ईमानदारी से प्रयास किया होता तो आज यह दिन देखने की नौबत नहीं आती। जिस देश में अंगूठा न लगाकर अपना नाम 'कमला' लिखना ही शिक्षित होने की परिभाषा हो और जिस सरकार ने सुशिक्षित होने का उपरोक्त मानक तय किया हो, वह आज वह पर नासमझ होने का इल्जाम लगाए तो यह समझ से परे है।

विचारणीय है कि आजादी के बाद से लंबे समय तक सत्ता पर काबिज रही पार्टी ने क्या देश की जनता को ऐसी शिक्षा दी जिससे वह किसी विषय पर गहराई से चिंतन-मनन करके उस पर अपना निर्णय दे सके? जाहिर-सी बात है कि जब तक देश की जनता सुशिक्षित नहीं होगी और किसी भी मुद्दे या योजना के सफेद और स्याह पक्ष पर गहराई से चिंतन करने की क्षमता व समझ उसके भीतर विकसित नहीं होगी तब तक आपको किसी भी तरीके का आरोप लगाने का हक नहीं। हमारे देश की शिक्षा नीतियों में कितनी खामियां हैं या जगजाहिर है। आज की शिक्षा केवल नौकरी पाने का साधन बन कर रह गई है। इसमें वह क्षमता नहीं कि देश या दुनिया के हित या अहित पर चिंतन के लिए नागरिकों को तैयार कर सके। अर्थोपार्जन केंद्रित शिक्षा व्यवस्था हमारी शैक्षिक गुणवत्ता और देश के भविष्य के लिए घातक है।

पिछली सत्तारूढ़ पार्टियों ने जो कुछ बोया वह उन्हें काटना भी पड़ेगा। इसके साथ ही मौजूदा सरकार से उम्मीद है कि वह शिक्षा सहित सभी क्षेत्रों में सुधार लिए प्रभावी कदम उठाएगी। शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के साथ ही देश के नागरिकों के लिए हाईस्कूल या इंटरमीडिएट तक की शिक्षा अनिवार्य करनी चाहिए। इसी दौरान तकनीकी पाठ्यक्रम को कड़ाई से लागू करना चाहिए जिससे उन्हें शिक्षित होने का दर्जा पूरी ईमानदारी से दिया जा सके और वे अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के साथ देश और समाज के हित-अहित पर विचार कर अपनी बात रख सकें।

● *धर्मेंद्र प्रताप सिंह, केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय, कासरगोड*

बर्बर पुलिस

फरीदाबाद के आदर्श नगर थाने में पांच पुलिस वालों ने एक महिला को चमड़े की बेल्ट से पीटा। वीडियो वायरल हो गया तो पुलिस का बर्बर चेहरा हम सबके सामने आ गया। जो पुलिस हमारी रक्षा के लिए बनाई गई है उसके जवानों की ऐसी करतूत निहायत अफसोसनाक है। आज के समय में जब महिलाएं सब जगह देश का मान बढ़ा रही हैं, एक महिला के साथ पुलिस का बर्बर व्यवहार बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। पता नहीं ऐसी और कितनी घटनाएं होती होंगी जो हम सबको पता ही नहीं चलतीं। क्या सरकार कोई कड़ा कदम उठाएगी जिससे इस तरह की घटनाएं दुबारा न हों! हालांकि इन पुलिस वालों को बर्खास्त कर दिया गया है पर इतना ही काफी नहीं है। इन सभी पुलिसकर्मियों को गिरफ्तार कर-के इनके विरुद्ध कठोर कार्रवाई करनी चाहिए।

● *बृजेश श्रीवास्तव, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश*

हादसे की जड़ें

गुजरात के सूरत शहर में कोचिंग सेंटर में शार्ट सर्किट के कारण हुआ हादसा दिल दहला देने वाला है। पूर्व में भी इस प्रकार की अनेक दुर्घटनाएं हो चुकी हैं जिनमें बड़े पैमाने पर जान-माल की क्षति हुई है। इन सबके बावजूद जिम्मेदार एजेंसियां लापरवाही, भ्रष्टाचार और अनियमितता की पर्याय बनी हुई हैं। निर्दोष नागरिक अपनी जान गंवाते रहते हैं पर व्यवस्था के कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। अवैध रूप से बने भवन और नियमों के परे जाकर दी गई अनुमतियों का खमियाजा भुगतने के लिए लोग अभिशप्त हैं। संस्थान भी तय मानकों का ध्यान नहीं रखते हैं। अधिकांश कोचिंग सेंटर या कंपनियां सिर्फ लाभ के गणित को प्रमुखता देती हैं।

● *ललित महालकरी, इंदौर, मध्यप्रदेश*

दागी प्रतिनिधि

एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक अलायंस (एडीआर) द्वारा सत्रहवीं लोकसभा के चुनाव परिणाम आने के बाद जारी रिपोर्ट में 542 में से 233 सांसदों (43 फीसद) के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज होने की बात कही गई है। 2014 में निर्वाचित ऐसे सांसदों की संख्या 185 (34 फीसद) थी। स्पष्ट है कि ये आंकड़े साल दर साल बढ़ रहे हैं। गौरतलब है कि केरल के एक लोकसभा क्षेत्र से आए सांसद के खिलाफ तो 200 से ऊपर आपराधिक मामले दर्ज हैं जिनमें बलात्कार और हत्या प्रमुख हैं। रिपोर्ट में केरल 90 फीसद और बिहार 82 फीसद आपराधिक मामलों वाले सांसदों के साथ सर्वोच्च श्रेणी में हैं। ज्ञात हो कि सुप्रीम कोर्ट ने एक आदेश जारी किया था जिसमें कहा गया था कि सभी प्रत्याशी चुनावी हलफनामे में अपने आपराधिक मामलों की जानकारी देंगे जिसे निर्वाचन आयोग मतदाताओं से साझा करेगा ताकि उन्हें पता चले कि उनका जनप्रतिनिधि कैसी छवि का है। दरअसल, यह कवायद देश की राजनीति से आपराधिक पृष्ठभूमि के नेताओं को दूर रखने के लिए की गई थी।

विडंबना यह है कि शासकीय सेवा में चतुर्थ श्रेणी पदों के लिए भी प्रत्याशी पर आपराधिक मामले होने से उसकी पात्रता निरस्त कर दी जाती है मगर देश की जिम्मेदारी उठाने वाले नेताओं के लिए यह नियम लागू नहीं किया जाता। लोकतंत्र में संसद एक पवित्र स्थान है। यहीं से किसी भी देश के विकास की गाथा शुरू होती है। ईमानदार, निष्पक्ष, कर्तव्यनिष्ठ सांसदों को वहां पहुंचाने की जिम्मेदारी संविधान मतदाताओं को देता है। लेकिन हम ही अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन ठीक तरह से नहीं करते हैं। लिहाजा, समय की मांग है कि आपराधिक पृष्ठभूमि वाले लोगों को चुनाव लड़ने से रोकने के लिए विशेष कानून बनाया जाए। दूसरी तरफ मतदाता जागरूकता का परिचय देते हुए आपराधिक मामलों वाले उम्मीदवारों को चुनाव में अपना मत न दें। यह लोकतंत्र की शुचिता के लिए जरूरी है।

● *अमित पांडेय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com